Barcode - 5990010044612
Title - Braj Madhuri
Subject - LANGUAGE. LINGUISTICS. LITERATURE
Author - Gajendra Nath Chaturvedi
Language - hindi
Pages - 71
Publication Year - 1991
Creator - Fast DLI Downloader
https://github.com/cancerian0684/dli-downloader
Barcode EAN.UCC-13

८११.८
गजे | क्र

गजेन्द्रनाथ चतुर्वेदी

ब्रज-माधुरी

गजेन्द्रनाथ चतुर्वेदी

साहित्यकार संसद
इलाहाबाद

प्रकाशक □ साहित्यकार संसद
65, रसूलाबाद, इलाहाबाद–4

सर्वाधिकार □ लेखकाधीन

प्रथम संस्करण □ 1991

मुद्रक □ पियरलेस प्रिन्टर्स
1, बाई का बाग, इलाहाबाद–3

आवरण □ इम्पैक्ट, इलाहाबाद–1

मूल्य □ 45-00 रुपये

सुकाव्य-रसिक

स्नेह की प्रतिमूर्ति

आदरणीय अग्रज

स्व० पं० पृथ्वीनाथ चतुर्वेदी

को सादर समर्पित

छन जोति छिपै, पै दिपै सो दिपै—
पट-पीत की कंचनी सोभा बड़ी।
सुरचाप उतै, बनमाल इतै,
बग-पाँति उतै, इतै मोती लड़ी।
बर बारि की बूँदैं उतै, इत तौ—
रस-धारैं रहैं उमड़ी घुमड़ी।
उत बैठी कहा इत, देखु भटू,
घन सौं घनस्याम सौं होड़ पड़ी।

शुभकामना

आधुनिक काव्य में ब्रजभाषा के मधुर छन्द सुनने पर ऐसा लगता है जैसे किसी बालक को बहुत दिन की बिछुडी माता के मीठे बोल सुनने के लिए मिल जायँ। महाकवि 'रत्नाकर' के बाद श्री गजेन्द्र नाथ चतुर्वेदी की 'ब्रज माधुरी' ऐसी ही रसमयी रचना है जिसमें ब्रजभाषा की चिरन्तन माधुरी छन्द-छन्द में छलक उठी है। छन्द संख्या 31 में उनकी एक उक्ति है। कोटिक बरस लौं न रंचक बिरस होत अजब अनूठौ श्री गुपाल कों दरस है।' अनुरक्ति की यह आकांक्षा राधा के हृदय से निकली है जो कवि के कंठ में गूंज उठी है।

इस भाँति सूक्ति-सौन्दर्य के अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। भावों की मार्मिकता तो जैसे घनानन्द और रसखान के काव्य जैसी ही लगती हैं, कहीं-कहीं उससे भी अधिक। मुझे विश्वास है, श्री चतुर्वेदी जी भविष्य में ब्रजभाषा काव्य की यह परम्परा सुरक्षित ही नहीं, अग्रसर कर विकास के ऊँचे शिखरों तक पहुँचायेंगे।

डॉ० रामकुमार वर्मा

वक्तव्य—एक

श्री गजेन्द्रनाथ चतुर्वेदी कृत व्रज-माधुरी कृति पढ़ने को मिली । रचना का नाम जैसा है वैसा ही गुण भी है इसमें । माधुर्य में डूबी हुई है सम्पूर्ण कृति । घनाक्षरी हिन्दी का जातीय छन्द है, लेकिन दुर्भाग्य है कि कवि लोग भूलकर इधर-उधर भटक रहे हैं । इस छंद की सघन शब्दावली और प्रभावी निपात तथा तेज गति सभी भाव परिपाक में सहायक होकर उसे चरमता तक पहुँचाते है । रीतिकालीन प्रवीण कवियों के बाद आधुनिक काल में सनेही, अनूप, वचनेश, शंकर, हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त ने खडी बोली में इसके सफल प्रयोग किए । सनेही, वचनेश, हरिऔध ने ब्रजभाषा में भी लिखना नहीं छोड़ा, लेकिन रत्नाकर ने उद्धवशतक लिखकर उस माधुरी का पुनः पान कराया जो वस्तुतः तुलसी के पश्चात् केशव, देव, मतिराम और पद्माकर की सम्पत्ति बन चुकी थी । आधुनिक काल में रत्नाकर के पश्चात् भी अनेक कवियों ने ब्रजभाषा में कवित्त सवैये लिखे, लेकिन रत्नाकर के छन्दों की सरसता श्री गजेन्द्रनाथ चतुर्वेदी को छोड़कर कोई अन्य उत्पन्न न कर सका । रत्नाकर कला सचेष्ट ज्यादा थे । इसलिए अपक्षय न होने पर भी भाव कहीं-कहीं अलंकार के समकक्ष नहीं उठ पाता । मुझे प्रसन्नता है कि 'ब्रज-माधुरी' में भाव-माधुरी पर कवि का ध्यान बराबर केन्द्रित रहा है, इसलिए स्वाभाविक पदमैत्री के अतिरिक्त कवि ने आलंकारिक घटाटोप कहीं नहीं आने दिया है । सौन्दर्य एवं प्रेम संगुम्फ युक्त बिम्बों से जगमगाती भाषा मन आकृष्ट कर लेती है । एक उदाहरण पर्याप्त होगा—

सोचति ही कलित किनारो गहि लैहौं बेगि
बेग पै अधिक है उदेगनि मरति हौं ।
पल पल पारद लौ झलमल झलकत
ललकत ताहि उरकंठ लौ भरति हौं ।
मीन मत वारे कहूँ फूले हैं कमल दल
भौरन की भीर है गँभीर सो डरति हौ ।
लहर अनूठी उठै देह मोरी लहराति
आली रूप-पानिप मैं डूबि उछरति हौं ।

एक बात अवश्य है कि पाठक को कवि समय तथा ब्रजभाषा-काव्य-परम्परा का यदि ज्ञान होगा तो उपर्युक्त छन्द का आनन्द अधिक उठा सकेगा, लेकिन वह यदि काव्यदीक्षित पाठक नहीं है तो भी रस सिक्त अवश्य होगा। श्री चतुर्वेदी ने संकेत दिया है कि—

सुखमा सिंगार मैन-मद के हरनहार
राधे हियहार प्रेम नेम के अधार है।
सतत उपासे प्यासे प्रानन पपीहरा के
प्यारे उपचार स्वाति बुँद से उदार हैं।
रसिक रँगीले छैल सुछवि छबीले
घन सघन रसीले स्यामतन गभुआर हैं।
कृपाकन्द आरति निकन्द ब्रजचन्द चारु
मोरे रखबार ये ई नन्द के कुमार हैं।

जिसके रक्षक ऐसे सौन्दर्य-रूप-राशि-अधिपति, रसीले, रँगीले तथा माधुर्य-स्रोत ब्रजचन्द हों, उस काव्य में सरसता होना कोई आश्चर्य नहीं है। मेरी कामना है कि श्री गजेन्द्रनाथ चतुर्वेदी की इष्टोपासना-प्रदत्त यह ब्रज-माधुरी आज के विक्षिप्त, कुंठित, विक्षुब्ध तथा संत्रस्त जनसमूह को रसाप्लावित एवं परितृप्त करती रहे।

डॉ० मोहन अवस्थी

वक्तव्य—दो

देववाणी संस्कृत के साहित्य वर्चस्व की उत्तराधिकारिणी ब्रजभाषा एवं अवधी हैं। इसमें संभवतः किसी भी विपश्चित् का वैमत्व न होगा। परन्तु रसवत्ता एवं काव्यपाक की दृष्टि से इन दोनों में भी ब्रजभाषा कनिष्ठिकाधिष्ठित प्रतीत होती है। ब्रजभाषा की कविता का रसमाधुर्य, वक्रोक्ति वैचित्र्य, सौशब्द्य, अर्थ गाम्भीर्य, पदगुम्फ एवं अप्रस्तुत विधान अद्भुत रूप से संस्कृत कविता की समर्थ समकक्षता सिद्ध करता है।

देव, बिहारी, मतिराम, पद्माकर, सेनापति, द्विजदेव, रसखान, ग्वाल, घनानन्द सरीखे शृंगारी कवियों ने अष्टछाप सूरियों से सम्प्राप्त विरासत का जैसा सदुपयोग किया और कविता कामिनी का जिस उदारता, सहृदयता एवं नागरता के साथ शृंगार किया, वह समूची विश्वकविता के ऐतिह्य में अन्यत्र अनुपलब्ध है।

नन्द नन्दन कृष्ण जैसा नायक, कालिन्दी जैसी प्रणय-संबर्धिनी तरंगिणी, कदम्ब जैसे हार्द मेदुर वृक्ष, करील जैसे निमृत कुञ्ज तथा वृन्दावन जैसा अनुराग पीठ क्या पृथ्वी पर और कहीं है? वृन्दावन स्वयमेव ब्रजभाषा एवं कृष्ण काव्य का पर्याय बन चुका है, भारतीय साहित्य में।

खडी बोली हिन्दी के उद्भव, कौमार्य एवं प्रौढ़ि के बावजूद भी नित्य यौवना ब्रजभाषा किसी भी दृष्टि से क्षीण नही हुई। इस सत्य का प्रमाण हमें 'रत्नाकार' के 'उद्धव-शतक' से तो मिलता ही है, आज के ब्रजभाषा काव्य से भी वही सत्य प्रमाणित हुआ है। आज की ब्रजभाषा के समर्थ साधक अपनी रस सिद्ध एवं प्रगल्भ भावा लेखनी के पीयूष प्रसव से उसकी प्राक्तन गरिमा एवं महिमा का बोध कराते हैं।

ऐसे ही अनन्य सिद्धतीर्थ हैं पं० गजेन्द्रनाथ चतुर्वेदी जिन्हें मैं ब्रजभाषा की साहित्याराधना का 'चरणामृत' मानता हूँ। चतुर्वेदी जी ब्रजरज में उपजे रत्न है। ब्रजभाषा उन्हें ब्रजभूमि के पञ्च तत्त्वों से मिली है। ब्रज की माटी, ब्रज का उन्मुक्त आकाश, ब्रजभूमि का पानी, ब्रजरज की गन्ध तथा ब्रजभूमि की ऊष्मा ने उनके व्यक्तित्व में सांस्कारिक सहज कविता का रसा-

मन भर दिया है। फलतः वह मात्र हृदय अथवा कण्ठ से ही कवि नहीं हैं, चेतना के अणु-अणु से कवि हैं। अथवा यह कहूँ कि 'साङ्कोपाङ्ग कवित्व' ही हैं श्री चतुर्वेदी जी।

मैंने पं० गजेन्द्रनाथ चतुर्वेदी जी की प्रत्यग्र काव्य कृति 'ब्रज माधुरी' का अनेकशः परिशीलन किया है। उनकी कविता की प्रशंसा या समीक्षा के लिये नही, केवल आत्म वृत्ति के लिये ! प्रथम छन्द बाँचते ही मैं कब और कैसे कालिन्दी तट पर जा खड़ा होता हूँ—यह अब तक मै स्वयं नही समझ पाया। परन्तु 'ब्रज-माधुरी' को पढ़ते समय एक बार भी मै 'प्रयाग' में नहीं रह पाया। वह कविता, जो मन-प्राण की पहचान समाप्त कर दे, आत्म बोध को विस्मृति के गर्त मे डुबा दे—सच्चे अर्थों में कविता है।

मेरी दृष्टि मे 'ब्रज-माधुरी' के छन्दो को लिखकर चतुर्वेदी जी ने अक्षय कवियश प्राप्त कर 'लोक' को तो सिद्ध किया ही, उससे भी कहीं अधिक, राधामाधव की समर्चना करके उन्होंने अपना 'गोलोक' भी सिद्ध कर लिया। आचार्य कवि श्री गजेन्द्रनाथ चतुर्वेदी की इस दिव्य रचना के लिये मैं उनका हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ।

'अभिराज' डॉ० राजेन्द्र मिश्र
एम० ए०, डी० फिल्०, विद्यासागर (मानद डी० लिट्०)
अध्यक्ष संस्कृत-विभाग, शिमला विश्वविद्यालय

लेखक के उद्‌गार

ब्रज-माधुरी में समय-समय पर मुक्तक शैली में लिखे मेरे ब्रजभाषा के 108 कवित्त संग्रहीत हैं। ये कवित्त यथा सम्भव विषयानुक्रम अनुसार संयोजित कर दिये गये हैं ताकि सुरसिक पाठकों को सम-भावी कवित्तों के पढ़ने में अधिक आनन्द आ सके। फिर भी मुक्तक शैली में लिखा प्रत्येक कवित्त एक प्रकार से अपने में पूर्ण माना जाता है, अतः इनमें प्रबन्धात्मकता ढूँढ़ना अनावश्यक होगा। 'प्रारम्भिक छन्दों के पश्चात् 'गंगा-स्तुति' विषयक कवित्तों को गंगा-महिमा वर्णन की परम्परा के साथ जोडते हुए गंगा के परम पावन, समस्त पाप-समूह नाशक, त्रय-ताप-हारी उसी उल्लासमय और लोक-मंगल-कारी संदर्भ में देखना, अधिक उपयुक्त होगा। अन्य अधिकांश कवित्तों का सम्बन्ध श्री राधाकृष्ण की प्रेमानुरागमयी भक्ति एवं लीलाओं से है जिसके विषय में यह ठीक ही कहा गया है—'यल्लब्ध्वा पुमान सिद्धो भवति, अमृतो भवति, तृप्तो भवति'—इसे प्राप्त करने से मानव सिद्ध हो जाता है; अमर हो जाता है; और तृप्त हो जाता है तथा 'यत्प्राप्यन न किञ्चिद्वाञ्छति'—इसे प्राप्त करने वाले को फिर किसी वस्तु की इच्छा नहीं होती।

जहाँ तक ब्रजभाषा का सम्बन्ध है यह तो मेरे घर की बोली है। माथुर चतुर्वेदी और भदावर-प्रान्त[1]-वासी होने के नाते ब्रजभाषा से मेरा अतिशय प्रेम होना स्वाभाविक ही है।

'सुर भाषा सों अधिक है, ब्रजभाषा सो हेत।
ब्रज-भूषन जाकों सदा, मुख-भूषन करि लेत।"

वास्तव में ब्रजभाषा जहाँ ब्रज वासियों के मन प्राण में बसी रही है वहाँ ब्रजेतर कवियों की भी कंठहार बनी रही। विगत लगभग पाँच शताब्दियों से यह सर्वमान्य काव्य-भाषा के रूप में प्रतिष्ठित रही और इसमें बहुसंख्यक कवियों द्वारा अपार साहित्य का सृजन हुआ। यह परम्परा कैसे छोड़ी जा सकती है। फिर काव्य-शास्त्रीयता, कलात्मक भाव-गरिमा, रसात्मकता, मनोदशाओं की सावयविक व्यंजना, शब्द-वैभव, उक्ति माधुर्य, वर्ण-बोध, लाक्षणिकता, चित्रा-

---

1. आगरा जिले का वह पूर्वीय भाग जिसकी सीमा पश्चिम और दक्षिण में राजस्थान व मध्य प्रदेश से मिलती है, तथा जो पश्चिम में उटंगन, उत्तर में यमुना तथा दक्षिण में चम्बल नदियों से घिरा है 'भदावर' का मुख्य भाग है। इसमें इटावा का दक्षिणी भाग तथा मध्य प्रदेश के भिंड जिले का उत्तरी भाग भी सम्मिलित माना जाता है। सारा भदावर-प्रान्त ब्रज-मण्डल के अन्तर्गत ही आता है।

त्मकता, सूक्ष्म पर्यवेक्षण, सुकुमारता, सौन्दर्याकन एवं अलंकरण की प्रभावोत्पादकता आदि की दृष्टि से ब्रजभाषा काव्य बेजोड़ है।

आज कवि कर्म में प्रवृत्त होने के पूर्व भारत का नाट्यशास्त्र, भामह का काव्यालंकार, दंडी का काव्यादर्श, उद्भट का अलंकार-सार-संग्रह, अप्पय दीक्षित का कुवलयानन्द, मम्मट का काव्य-प्रकाश या विश्वनाथ का साहित्य-दर्पण कौन देखना चाहता है। भानुदत्त की रस-मंजरी या जगन्नाथ के रस-गंगाधर से परिचय प्राप्त करना आज अप्रासंगिक कहा जाने लगा है। पाश्चात्य समीक्षा पद्धति के साथ-साथ काव्य-लक्षण और काव्य-प्रयोजन भी विदेशी हो गये हैं। हिन्दी या संस्कृत आचार्यों की अपेक्षा आज नई कविता के लिये टी० एस० इलियट मार्ग दर्शक है। नृत्य-कला और संगीत के क्षेत्र में आज भी शास्त्रीयता की कद्र की जा रही है। चूँकि कवि एक निरंकुश प्राणी है अतः आधुनिक कवि तो नितान्त निरकुंश हो गया है और कविता लगभग सपाट गद्य बन गई है। खैर छोड़िये इस विवाद को।

ब्रज काव्य के विषय में प्रायः यह कहा जाता है कि इसमें सम सामयिक चेतना का अभाव तथा परम्परा का अन्धानुकरण है। मै इस दृष्टिकोण को काफी भ्रमात्मक मानता हूँ। युगीन सांस्कृतिक चेतना के रूप में हमारा भक्ति आन्दोलन राष्ट्रीय जीवन का महानतम प्रेरणास्रोत था। यह एक सांस्कृतिक पुनर्जागरण था जिसके साथ जुड़ा था हमारा युग-बोध, हमारी समकालीन सामाजिक मान्यताओं, धर्म साधनाओं, जीवन-गत आकांक्षाओं का व्यापक और गहरा चित्रण, लोक-जीवन का परम उदात्त अक्स। सूर, कबीर, नानक, दादू, रैदास, सुन्दर में हमको वही मिलता है जो आज हमको बेहद चाहिये—अपना प्यारा कृष्णत्व, सम्पूर्ण दृश्य जगत की सतही रूप श्री से आँखें फेर लेने का अनुपम भक्ति-भाव, एक अनाविल सौन्दर्य दृष्टि का उन्मुक्त धरातल, अलौकिक अपूर्वता का बोध, पुण्य तोष भाव और सान्द्र सत्वोद्रेक। भौतिक द्वन्द्वात्मक चेतना से अलग इस ऊर्द्धमुखी चेतना की बात ही अलग है। तभी राधा की माधव गति और माधव की राधा गति में ललित लीला प्रवण चिर प्रवाह शीलता दिखाई दे सकेगी।

'लीलाया एव प्रयोजनत्वात्। ईश्वरत्व वा देवन लीला पर्यनुमोक्तुं शक्या।'

राधा तो कृष्ण की आह्लादिनी शक्ति, प्रकृति और माया की प्रतीक और साथ ही अनुग्रह मूलक आसक्ति की पराकाष्ठा है। वह कृष्ण की कृपा पात्री है, अनन्यतम हैं, भक्ति की पूर्णता है, विरहाकुलता की हृदय बेधी व्यंजना हैं। गोपांगनाएँ श्रुति रूपा मूर्तिमती ऋचाएँ हैं। ब्रज काव्य की यह धारा भक्ति श्रृंगार से अनुप्राणित और माधुर्य भाव से संपोषित सर्व सुलभ और सर्व सुख कारक है। रूपासक्ति गुण महात्म्या कान्तासक्ति से जुड़कर यह अन्ततोगत्वा

'ये यथा प्रपद्यन्ते तां स्थैव भजाम्यहम्' का ही सन्देश देती है।

साहित्य में आमुष्मिकता की चिन्ता से हीन ऐहिक शृंगार भावना से जरा हटकर अभिसारिका, विप्रलब्धा, खंडिता आदि को यदि इसी परिप्रेक्ष्य में देखने की चेष्टा की जाय तथा यदि इसमें कोमल भावनाओं की सुकुमारता और तल्लीनता की थोड़ी बहुत झलक मिले तो मैं समझता हूँ ब्रज-काव्य का वास्वविक रूप निखर कर पुनः सामने आ सकता है। इसी निखार को लाने हेतु मैं बराबर सचेष्ट रहा हूँ और यदि इसमें मुझको शतांश भी सफलता मिली हो तो मैं अपने प्रयास को सार्थक समझूंगा।

मेरा मत है कि आज सत् काव्य द्वारा जन अभिरुचि के परिष्कार की बड़ी भारी आवश्यकता है। सत् काव्य के सृजन में सौन्दर्य के साथ 'शिवत्व' और 'सर्वं मंगल मांगल्यम्' के भाव को संपृक्त किये बिना काम नहीं चलेगा।

प्रस्तुत संग्रह में संग्रहीत कविताओं को पढकर यदि प्रेमी पाठकों को उक्त दिशा में हल्का-फुल्का ही सही कोई संकेत मिलता है तो मैं आत्म तुष्टि का अनुभव करूँगा। मेरे तुच्छ प्रयास में जो भी त्रुटियाँ रह गईं हों उनके लिये प्रेमी पाठक मुझको क्षमा करेंगे ऐसा मेरा विश्वास है।

प्रस्तुत काव्य-संग्रह कदापि भी पूरा न हो पाता यदि इसके पीछे प्रातः स्मरणीय परम श्रद्धेय स्व० पं० श्री नारायण चतुर्वेदी—हमारे भैया साहब, स्व० डा० रामकुमार वर्मा. श्री अरविन्द आश्रम, पाण्डिचेरि की वरिष्ठ सदस्या स्व० विद्यावती 'कोकिल' का शुभाशीर्वाद, अग्रज तुल्य मेरे अभिन्न मित्र हिन्दी के रस सिद्ध कवि डा० लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक', डा० विद्या निवास मिश्र, डा० जगदीश गुप्त, डा० मोहन अवस्थी, अभिराज डा० राजेन्द्र मिश्र, डा० प्रताप नारायण टंडन, डा० सरला शुल्क, डा० देवराज, डा० कुँवर चन्द्र प्रकाश सिंह की पावन प्रेरणा, शब्दार्थ शिल्पी शान्ति निकेतन के डा० देवकी नन्दन श्रीवास्तव 'नन्दन' का स्नेह सद्भाव प्रारम्भ से ही मेरे साथ न रहा होता।

इस संग्रह के पाठ निश्चय में, पांडुलिपि तैयार करने में, प्रूफ संशोधन में अप्रतिम सक्रियता और सहृद्धयता के प्रतीक श्री प्रद्युम्ननाथ तिवारी 'करुणेश', प्रधानमंत्री, साहित्यकार संसद, प्रयाग द्वारा पग-पग पर दिया गया योगदान अविस्मरणीय है। सुकवि पं० राजाराम शुक्ल ने अपने अमूल्य सुझावों से मुझको लाभान्वित किया है।

मेरी पुत्री श्रीमती अपर्णा 'प्रीता' ने निरन्तर दौड़ भाग कर समस्त मुद्रण कार्य अति सुचारु रूप से सम्पन्न कराया है। उसके साथ तो घर की बात है। अतः उसके प्रति क्या लिखूं, क्या कहूँ।

हमीरपुर हाउस, विजयनगर, लखनऊ

गजेन्द्रनाथ चतुर्वेदी

प्रकाशकीय

साहित्यकार संसद, प्रयाग अपने अन्य साहित्यिक कार्य-कलापों के साथ-साथ सुसाहित्य के प्रचार-प्रसार एवं प्रकाशन हेतु भी कृत संकल्प रही है। यह बड़े हर्ष का विषय है कि आज उसी क्रम में संसद द्वारा श्री गजेन्द्रनाथ-चतुर्वेदी के काव्य-संग्रह 'ब्रज-माधुरी' का प्रकाशन किया जा रहा है। ब्रज माधुरी में ब्रजभाषा के काव्यगत सभी गुण विद्यमान है।

इस प्रकार साहित्यकार संसद अपनी संस्थापिका स्व० महीयसी महादेवी वर्मा के स्वप्नों को साकार रूप प्रदान करना अपना पुनीत कर्तव्य समझती है। हमें आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास है कि भविष्य में भी संस्था इसी प्रकार सुसाहित्य का प्रकाशन कर हिन्दी साहित्य की विभिन्न विधाओं को समुचित प्रोत्साहन प्रदान करती रहेगी।

प्रधानमन्त्री
साहित्यकार संसद्

अनुक्रमणिका

शारदा-स्तवन : 17
श्री निकुञ्ज विहारिणे नमः : 18
शिव-स्तुति : 19
गंगा-महात्म्य : 19
श्री राधा-छवि : 25
रूपाकर्षन : 33
लगन'गुपाल की : 35
नैन-दशा : 39
बैरी-नैना : 44
प्रीति-बेलि : 46
मदनाग्नि : 47
बाँसुरी : 48
सरद-बिलास : 51
प्रेमासक्ति : 52
मान-मनावन : 55
बेनी-शृंगार : 57
मनहारिन लीला : 58
आगत्पतिका : 58
कृष्णाभिसारिका : 60
विप्रलब्धा : 60
खण्डिता : 61
मध्या-धीरा : 62
बचन-बिदग्धा : 62
गुप्ता : 63
कृष्ण सौं : 64
लाज : 65
स्वप्न : 67
स्नेहाभिव्यक्ति : 67
पंक तौ न लाग्यौ पै कलंक लाग्यौ बजि कै : 70
अनुनय : 70
मोरे रखबार येई नन्द के कुमार हैं : 71
उद्‌बोधन : 72

□ □

शारदा-स्तवन

प्यारे पुंडरीकन पै थापै कदली के खंभ,
अजब अचंभौ तापै केहरि हूँ बलखात।
चारु चक्कवाकन पै कंबु अमी अंबु झरैं,
तापै चन्द, चन्द पै अनूठे खिले जलजात।
बिधि रचना सौं जाकी रचना बिचित्र,
चित्र जाकौ मन-मन्दिर मैं मन्द मन्द मुसकात।
सोई बरदानी बर बानी नव रस सानी,
तोतरी सी बानी मो सँवार्‌यौ करै दिन रात॥

श्री निकुञ्ज विहारिणे नमः

नैनन की सैनन की चोट मैन बानन सौं,
मन्द - मन्द हाँसी चारु चन्द सौं चुराई है ।
साँउरौ बरन नील घन सौं चुरायौ, चोरि--
पीत-पट आभा चल चंचला सौं पाई है ।
जाये चोरी चोरी, चोरी-चोरी नन्द घर आये,
चोरन की कारी अधिरात मन भाई है ।
तन चोरौ, मन चौरो, मेरौ प्रान-धन चोरौ,
दूध-दधि-चोर तोरी चोरी की दुहाई है ॥

॥ 1 ॥

शिव-स्तुति

काम-रिपु, बाम अंग बाम लपटायें,
खाँये बिष पै विषम अपनायें सुधाधर हौ।
गोरे तन, छारकारी अचल समाधि धारी—
लोक लोकचारी नृत्यकारी पै प्रबर हौ।
सिव सिव राउरी सकल उलटी है रीति,
गंग जल संग नैन धारैं अग्नि-सर हौ।
जग के त्रिसूल उनमूलौ, लै त्रिसूल फिरौ,
सबै सब देत, कहे जात सर्व हर हौ॥

॥ 2 ॥

गंगा महात्म्य

कारियै भभूत, भूत प्रेत प्रमथादि कारे,
जारे हैं अतनु कारे गज - चर्म धारे हैं।
डोलत डरारे, फन फूतकार भारे, करि—
माल उर धारे सोऊ ब्याल कारे-कारे हैं।
कारौ काल कूट घूंटौ, कारी अधिरात भावै,
भाल बिधु अंक अंक कारिख सँवारे हैं।
धारी गोरी गंग सीस वाही के प्रताप ईस,
सेस है गुराई आपु गोरे तन वारे हैं॥

॥ 3 ॥

ध्यान धरैं रंचक बिधान बिपदा के टरैं
रुख मुख कीन्है दुख दारिद हरति है।
द्वैक पग पारैं मग, जग-जातना के नग—
डग - मग डोलैं सो समूल बिदरति है।
ऐरी गंग तेरी रेनु रासि तम - त्रास नासि,
पास पाप पुंजन के छन मैं छरति है।
परति कहूँ जो एकै छींट, गुन गन हीन,
पीन पातकीन हरि हर सौ करति है॥

॥ 4 ॥

कैधौं नख-चन्द्र-चन्द्रिका है हरि पाँइन की,
भूपति भगीरथ के जसकी पताका है।
नभ-गंगा दूजी, छहरानि छीर-सागर की,
कैधौं सिव तेजस की साँची सुद्ध साका है।
कैधौं तीर्थराजन की राजति है राजी,
साजी परहित बिधि के बिधानन की खाका है।
कैधौं सत्व, तत्त्व, अमरत्त्व की लकीर—
कैधौं जन्हु-जप-जाई सूधी सिद्धि की सलाका है॥

॥ 5 ॥

चन्द्र चन्द्रिका सी खासी हीरक प्रभा सी,
मंजु मोतिन विभा सी सुप्रकासी ध्रुव तारा सी।
छीर फैन चारु, सित चीर, दिवा - दीपति सी,
दिपति अनूठी देवता सी, दिब्य दारा सी।
एक-रद-बुद्धि सी प्रबुद्ध सुद्ध सैलजा सी,
कुन्दकली, कुन्दन सी अमिय फुहारा सी।
ऐरी गंग धारा तेरी कीरति अपारा,
जग थारा पर थिरकि रही है मनो पारा सी

॥ 6 ॥

कोऊ - दिक् मंडल, खमंडल कौं कोऊ,
कोऊ रवि ससि-मंडल कौं फोरि कढ़े जातु हैं।
कोऊ स्याम तामरस दाम दुति कोऊ,
कंबु गौर भये और सुभ्र आभा मढ़े जातु हैं।
ऐरी गंग तेरी तुंग तरल तरंग लहैं
पच्छिराज संग सरबंग बढ़े जातु हैं।
देखत ही देखत दुनी के दुराचारी—
दिव्य देव-लोक द्वारन पै दौरि चढ़े जातु हैं

॥ 7 ॥

रवि-रथ गामी हैं मृगांक-मृग साधैं कोऊ,
नील-ग्रीव नाँधैं चढ़े कोऊ गजराज पै।
अलकापुरी के कोऊ कंचन बिमान बैठि,
हुकुम चलावैं किन्नरादिक समाज पै।
बरुन बिचारे ढूँढ़ैं मकर महोदधि मैं,
बिधि ढूँढैं हंस देव भ्रमित अकाज पै।
कीन्ह्यौ कहा गंगे या दुनी के सब नंगे,
कोऊ बृषभ बिराजे कोऊ राजे पच्छिराज पै

॥ 8 ॥

बिगलित अंग है महिष जम - पास टूटौ,
रंग बदरंग जम-दूतन समाज के।
कुम्भीपाक, रौरव, तमिस्रन में तारे परे,
हारे चित्रगुप्त डरे बिना काम काज के।
दच्छिन दिसा में भंक लोटैं, बंक बाजैं—
गंगे पल - पल डंके तेरे बिहद अवाज के।
ठौर न ठिकाने, लोक लोकन लुकाने फिरैं–
बेर से बिकाने जमराज जू के राज के॥

॥ 9 ॥

दौरि दूरि ही तैं दिव्य दरसन दीन्हैं देवि,
द्रोह, दम्भ, दारिद, दुरन्त द्रुत दरिगे।
मग माँहि मोह, मद, मदन मुए औ कोटि—
कलुष कगारन कछारन मैं छरिगे।
रोस रिते रेत मैं, त्रिदोस तीर - तीर तिरे,
आँचमन कीन्हैं आपै आप साप टरिगे।
जाने कहाँ पातक पुराने मो पराने गंगे—
ज्यौं ही तेरे पावन प्रवाहन में परिगे॥

॥ 10 ॥

छार - छार ह्वै कै कोऊ कहरैं कछारन मैं,
हारि हहरैं हैं औ न ठहरैं कगार मैं।
ररकि बिलाने, बिललाने कोऊ खार बीच,
कोऊ अरुझाने बिरुझाने हैं सिवार मैं।
पानीदार गंगे तेरौ पानी कौ उछार,
तो सौ देखियतु तो ही मैं न तीर, तरवार मैं।
हेरत ही हेरत मो पातक पुराने तोरी—
धार मै सिराने कै हिराने मँझधार मैं॥

॥ 11 ॥

कुंडल, किरीट, संख, चक्र, गदा पद्म भलैं,
आपुकी अनूप रूप रम्यता निखारैं हैं।
परम पुनीत पीत - पट चटकीलौ चारु,
आपु भलैं मोती मनि - माल हूँ सिंगारैं हैं।
हित सौं सँवारैं नित धारैं पै अनंग - रिपु,
संग - संग निःसृत अभंग गंग धारैं हैं।
याही लागि हे हरि हृदै सौं कहाँ टारैं,
हम प्रथमहि पूजैं तव चरन पखारैं हैं॥

॥ 12 ॥

अरुन अरुन प्रात ही सौं जरे बरे - जात,
कुटिल कलंकी कलानाथ रात - चारी हैं।
बूढ़े बिधि पीत से लखात, सनि कारे कारे,
हरि हूँ हमारे हा हा नील - बपु - धारी हैं।
एक रंग बारिन कौ खूब संग रंग जमै,
गोरे कहाँ कारिन के होत हितकारी हैं।
जोड़ी मिली न्यारी, हिम-सैल की अटारी —
गोरी गंग गोरे सित-कंठ जू की भईं प्यारी हैं॥

॥ 13 ॥

कहतिं कबौं है बे हैं, कहतिं कबौं हैं जे हैं,
बे हैं किधौं जे हैं, यहै सोचि मन हारैं री ।
उत भारी भीर भहराति देव द्वारन लौं,
पारन उतारि तारि कैसे कै सँम्हारै री ।
गंगा तौ प्रताप कोटि 'हरि' कोटि 'हर' भये
आपुने हैं कौन, कौन ताकौं निरधारैं री ।
याही दुख दूखि देखौ दै दै तोहि गारी—
ये रमा री औ उमा री औरै और कहैं डारैं री ॥

श्री राधा-छवि

फूटी परै कुंजन सौं रंच न अमात आभा,
सौंधे में अन्हात बलखात मधु - बात री ।
मुसकात कंज, कोक कोकी हूँ सिहात समै,
घिरे जात पंछीं, भौंर भीर मँडरात री ।
नीलघन बसन सुहात दामिनी सी देह,
काम-कामिनी क्यौं खात मात सरमात री ।
स्याम संग कौन उतै जात जलजात मुखी,
रात हूँ मैं जासौं आजु प्रात भयौ जात री ॥

चन्द्रमैं निचोरि चाँदनी मैं बोरि बोरि,
घोरि कुन्द कलिकान की कटोरिन मैं नायौ है।
सुबरन आब दै गुलाब के अँगारन पै,
अजब सराबी रंग डारि - डारि तायौ है।
परम पुनीत तामैं पुट नवनीत हूँ कौ,
कंजन - सुबास सौं मसालौ महकायौ है।
साँउरे पिया कौ जिया चोरिबै कौं राधे,
बड़ी बिधि सौं बदन तेरौ बिधि ने बनायौ है॥

॥ 16 ॥

पेखि-पेखि पापी ये कलापी कूकि कूकि उठैं,
छहरि छवान छ्वै छजीले छये केस पास।
त्यागि-त्यागि कुंजौं रागि गुंजरत वाही ठौर,
भौंरन के झौंरै मंजु ऐसी तन की सुबास।
चकि-चकि चौंकि चौंकि चहकि-चहकि चारु
चौकी हूँ चकोरन की चकराति आस पास।
कैसे कै दुराऊँ गहि ल्याऊँ चंद चाँदनी सौं,
वाके मुख-चन्द्रमा की स्याम सौगुनी उजास॥

॥ 17 ॥

सरस सुबास कौ निबास निसि बास हास—
सौगुनौ अमीरस सौ यामें उमहतु है।
अरुन उदोत होत औरै छविमान,
रूप सुखमा निधान थान जस कौ लहतु है।
परम पुनीत है न रंचऊ कलंक यामैं,
प्यारौ चंचरीक भयौ यही कौं चहतु है।
सुन्दरातिसुन्दर मुखारबिन्द तेरौ भटू,
कौन मति - मन्द याहि चन्द सो कहतु है॥

॥ 18 ॥

लहर - लहर लहराति जमुना सी चारु,
हेरति ही हरि कौ सुमन हरि लैनी है।
अमल - कमल दल कुन्द कलिकान गुही,
गंग की तरंगनि लौं अति सुख दैनी है।
लाल मनि मानिक सुलाल डुरियान पुही,
बीच - बीच सरसुति की सरसति स्रैनी है।
सकल मनोरथ की पूरन करन हार,
बाल तेरी बैनी है कै प्रगट त्रिबैनी है॥

॥ 19 ॥

दूध धोई रात, गोरे तन लहरात बैनी,
फूले काँस मानों मृदु हास की लुनाई है।
नील घन, नील चूनरी के झहरात झबा,
तारे जरी तारन की झलमलताई है।
कंजन से मंजु दृग - कंज ललके से परें,
झरैं सुधा - बिन्दु रूप - चांदनी सुहाई है।
उत सितभानु एक, कोटि सितभानु जैसी—
इत बृषभानु के अटा पै छटा छाई है॥

॥ 20 ॥

कुन्दन की बेलि मंजु कंजन कलित मानों,
ललित ठई है चारु जोति मुकुता मई।
हीर-कन चीरि कै गँभीर छीर-निधि ही सौं,
बिधि ने बड़ी बिधि सौं काढ़ी निधि ये नई।
कुन्द-कली, केसर, कुमोदिनी की कौन कहै,
सकल सुधा की बसुधा की सुभ्रता हई।
देखौ चलि स्याम बृषभान के अटा पै आजु
चाँदनी सौं चौगुनी चटक चाँदनी छई॥

॥ 21 ॥

तजि-तजि कुंज मंजु गुंरजत याही ठौर,
भौंरन के झौंरन के झौंर मँडरात हैं।
कलित कलापी कीर कोकिल कपोत,
रंच होत हैं न हाते क्यो इतैई घिरे जात है।
उमड़ि परी है राज - हंसन की भारी भीर,
मृदुल मृणालिका ज्यौं चाहि ललचात हैं।
चन्द अथयौ है पै भयौ है इन्हैं ऐरी कहा,
याही ओर भोर तैं चकोर चकरात हैं॥

घूँघट घटा मैं चन्द - बदन दुरायें चारु,
चातकी लौं चोप चित्त चायन चहति है।
बग मुकतान-माल, इन्द्रबधू मनि - जाल,
तन दुति दिव्य दामिनी लौं उमहति है।
पवन झकोरन लौं सीरी लै उसाँस,
झरि बूँदैं भरि आँस तम त्रासन सहति है।
घनस्याम तन बर साने मन कोऊ सुनी,
गोरी बरसा सी बरसाने में रहति है॥

सेउती कदम चारु नीकी है सुमन बारी,
सरस जुही की यामैं अजब बहार है।
रंग-रंग याके अंग अंगनि चुये से परैं,
गुन गरबीली मंजु सुभग सुढार है।
नवल बनी सी है सुबासित घनी सी,
भली अलिन प्रमोदिनी है सोभाकी सिंगार है।
लीजै श्री गुपाल उर ल्याइ या निहाल कीजै,
प्यारी फूलमाल सी ये बाल सुकुमार है॥

॥ 24 ॥

गोरे गदकारे लाल मन के हरन हारे,
सुरंग सँवारे मानों चसक सराब के।
दीपति के दीप स्याम अधर समीप छाय,
दहकि दहकि होत तोड़े महताब के।
कलित कपोल तेरे अमित अमोल आली,
सोने सौं मढे औ चढे मोतिन के आब के।
मदन महीपति की मंजु बगिया में लाजि,
फूलि रहे फूल आजु किंसुक गुलाब के॥

॥ 25 ॥

जाति जहाँ पाँति जलजात की खिलति जाति,
भाँति - भाँति फूल झरैं बचन उचारे पै।
कंजन की मंजु तित स्रेनी सित डोलि उठै,
चित हित चकित चितौनि रंच डारे पै।
कुन्द कलिका सी हाँसी, किंसुक गुलाब फूलैं।
कलित कपोलन अमोल रंग बारे पै।
याही तैं गुबिन्द ह्वै मिलिन्द मँडरान्यौ रहै
तेरे रति हूँ सौं रूप सहस हजारे पै।।
।। 26 ।।

कटि छटि केहरि पै पाँइन गयन्द गति,
सिव से उरोजन मनोज सरसाये हैं।
बिंबा से अधर कीर नासिका, मयंक मुख—
अंग - अंग द्वादस दिनेस दमकाये हैं।
जोरि - जोरि हारे बिधि मेल न मिलाएँ मिले,
'प्यारी' संग - संग नाउँ 'बामा' हूँ धराये हैं।
साँउरे पिया सौं यासौं गोरी तेरे लोयन मैं,
अड़ि लड़ि जैबै के अनूठे ढंग आये है।
।। 27 ।।

एक है न दूजी तिहूँ लोकन मैं देखियतु,
आँखैं करि चार, पंच विषै सुख मानिये।
यामैं है न छै कौ भय, सत्ता है अनूठी जाकी,
आठौ जाम चाहि नव - रस सनमानिये।
दसतक देतु है मनोज मन द्वारन पै,
रंच ना अवग्या रहै ऐसी बिधि ठानिये।
दरस परस में सरस सोई ल्याई आजु,
बारह बरस की गुपाल उर ल्याइये॥

॥ 28 ॥

लहरि लतासौ लहरात मदुगात जात,
रूप - रस - स्नात मधुबात कौन अन्त है।
रंग फैलि फबि रह्यौ, रति अंग दबि रह्यौ,
संग - संग चाहै जौ न कौन ऐसो सन्त है।
कोमल कमल से हैं नैन - दल बिकसित,
निबसित तामैं भृङ्ग भयौ डोलै कन्त है।
मैन मयमन्त ऐ री दुरौ अँगिया मैं,
तेरी तन - बगिया मैं कैसौ बगरौ बसन्त है॥

॥ 29 ॥

मन्द-मन्द हाँसी गरैं डारै फन्द फाँसी,
कुन्द कौंल कलिका सी केलि कीरति बिकासी है।
जाहि देखि बासी सी रमा सी सुरपुर - बासी,
सची, रति, रम्भा लगै दासी अनुदासी है।
रूप रंग रुचिर प्रकासी समुपासी सदा,
छवि छनदा सी दीठि मदन बिलासी है।
चारु सुखरासी मेटै सकल उदासी,
येई प्यारे ब्रज-चन्द जू की खासी चन्द्रिका सी है॥

॥ 30 ॥

रूपाकर्षन

परबस ह्वै कै हाय हौं तौ बरबस आली,
सरबस हारि बैठी कैसौ आकरस है।
बिबस बिहाल निबसतु वाही ओर तऊ,
पोर - पोर प्रान के तरासति तरस है।
बरसि-बरसि जात नैना ह्वै सरस, जामैं--
हरस बिषाद है, विषादऊ हरस है।
कोटिक बरस लौं न रंचक बिरस होत,
अजब अनूठौ श्री गुपाल कौ दरस है॥

॥ 31 ॥

मूँदि-मूँदि राखति हौं बाँके उर-पिंजर मैं,
भभरि भुलाने भरमाने पैन ठहरात।
चंचु चाहना की त्यौं पसारि प्रीति बारे पंख,
मानत कहाँ हैं ऐरी मेरी कही कोऊ बात।
आँसुन मैं फुदकि अन्हाये हैं, उसाँसन की—
पौन मैं लखात मानौ पल-पल बलखात।
मोरे प्रान-पंछी दिन रात मँडरात उतै,
वाही नील आभा मैं न जाने क्यों समाने जात॥

॥ 32 ॥

उमहि उमाहन के बिबिध बनाए रंग,
चाहन की तूलिका लै भूलि भभरातु है।
रूप की अनूप रेख रेखिबै कौं देखै जौलौं,
रूप तौलौं औरै नयौ रूप ह्वै सुहातु है।
प्यारे उर-पट पै सनेह चिकनाई छाई,
रंचन उपाउ कोऊ ठीक ठहरातु है।
कैसो चित्त मेरौ है चितेरौ, तेरौ आँकिबै मैं—
चित्र नन्द लाल चित्रवत भयौ जातु है॥

॥ 33 ॥

सोचति ही कलित किनारौ गहि लैहों बेगि,
बेग पै अधिक है उदेगनि मरति हौं।
पल-पल पारद लौं झल - मल झलकत,
ललकत ताहि उर कंठ लौं भरति हौं।
मीन मतवारे, कहूँ फूले हैं कमल - दल,
भौंरन की भीर है गँभीर सो डरति हौं,
लहर अनूठी उठै देह मोरी लहराति,
आली रूप-पानिप मैं डूबि उछरति हौं॥

॥ 34 ॥

लगन गुपाल की

काँटे सी पगन उर-अन्तर खगन लागी,
कोर करकीली चारु दृगन बिसाल की।
प्रान-पट मोरे हाय रँगन-मगन लागी,
छवि अनुरागी उन अधर प्रबाल की।
सोई पीर जगन - मगन उमगन लागी,
कानन ठगन धुन बाँसुरी रसाल की।
बिलग न होति सुलगन आठौ जाम रहै,
लागी ये लगन कैसी लगन गुपाल की॥

॥ 35 ॥

दूरि ही रहति धाय गहति उरन्तर है,
दहति निरन्तर कहाय रस - ख्याल की।
हाय इन आँसुन की धारन मैं धारति है,
सुरति उभारति है बिपति बिसाल की।
स्याम रंग बारी, धूम सारे ब्रज-मंडल मैं,
सीरी परी देह बाल बिबस बिहाल की।
सुलगन ब्यापी रहै तन - मन - प्रानन मैं
सु लगन कैसी है ये गोबिंद गुपाल की॥

॥ 36 ॥

दिन ना सुहात सूनी-सूनी डसि जात रात,
मैंन हूँ सतात चैन सकल नसायौ है।
निपट कटीली उरझीली उर-डारन मैं
भूलि रस-मूल प्रेम-फूल बिगसायौ है।
ह्वै कै गुनी ज्ञाता, जग त्राता, दीन-दाता,
ऐरे बाउरे बिधाता निज नाँउ क्यौं हँसायौ है।
मन तौ बनायौ सो बनायौ पै सु वा मन मैं;
कहा मन मानि मनमोहन बसायो है॥

॥ 37 ॥

अजब गुराई है चुराई सेतताई मानों—
कुन्दन सौं कुन्द सौं कि मोती नग हीर सौं।
कैधौं सुधा - सागर कि छीर - निधि ही सौं मथि,
बिधि ने निकारी दधि उदधि गँभीर सौं।
मृगमद भाल औ न गुंजन की माल धारै,
चोवा चुपरै न, डरै काजर लकीर सौं।
ऐरी बीर कालिह ही सौं देखी मैं मयंक-मुखी,
मुरि-मुरि जाति काँलिदी के नीर तीर सौं।

॥ 38 ॥

साँउरे दृगन आँजै अंजन बड़ी बिधि सौं,
मंजु मुसकाति भाल मृगमद धारे पै।
स्यामल सघन-घन हेरै है न फैरे दीठि,
कलित कदम्ब बन बीथिन निहारे पै।
बार-बार बारन सवाँरति है हारति है,
आपै रंच नील - पट घूँघट निकारे पै।
को है वह गोरी ऐती राति जो बितीते उतै,
स्याम-स्याम टेरै ठाढ़ी कालिंदी किनारे पै॥

॥ 39 ॥

अटकी उतैई जुपै हटकी मैं आठौ जाम,
गैल ना तजै है वाही छैल नटखट की।
मटकीली कटि, लटकीली लट पै या—
लहरानि पै लटू है चटकीली पीत-पट की।
भटकी मृगी सी, टटकी सी चोट खाँयैं डोलै,
रट सी लगावै कबौ बंसी, बंसी-बट की।
काल्हि ही सौं देखी सुधि निपट बिसारि बैठी,
ऐरी जमुना-तट की, घूँघट की, घट की॥

॥ 40 ॥

लसन सुरंग अंग - अंग बिलसन,
बिहँसन उर - कंज नेकु हँसन लगे हैं री।
रसन पगे से नैन कोर सरसन,
तरसन छन मैं ही कबौं रसन लगे हैं री।
गसन - डसन बिषधर येऊ कारे,
हारे मन - मीन फन्दन मैं फँसन लगे हैं री,
बसन कसन, प्यारे नन्द के दुलारे—
रह्यो बस न हमारे ही क्यौं बसन लगे हैं री।

॥ 41 ॥

नैन-दसा

कौन सुनै कासौं कहौं सहौं सो कहाँ लौं सहौं,
केसैं गहौं धीर पीर चौगुनी बढ़ति है।
दृगन समाय ततछन रोम-रोम छाय,
हाय धाय-धाय मन प्रानन मढ़ति है।
तेग, तरबार, बरछी सी कहै कोऊ ठनी,
अनी मैन-बानन की सान पै चढ़ति है।
ऐरी स्याम लोयन की कोर करकीली बड़ी,
काँटे सी करेजैं गड़ी काढ़ैं ना कढ़ति है॥

॥ 42 ॥

मन्द मुसकान की कमन्द फैंकि फाँसि लेत,
गाँसि गुन फन्द गहैं साँसन के छोर हैं,
रूप-हँसिया लै कबौं छल की कटारी मारै,
प्रानन के हाय काटैं लेत कोर-कोर हैं।
मोरे मन-मृग ही की क्यौं न देखौ दीन दसा,
बंक दृग बारिन के कैसे रोर-सोर हैं।
कोमल कमल हूँ के दल सौं बखानै जात,
ये तौ री! बधिक हूँ सौ अधिक कठोर हैं॥

॥ 43 ॥

वाही रूप - कानन के कलित कुरंग,
संग त्यागैं औ न आली कहूँ भूलि भटके रहैं।
वाही नील सर के सरोज, कैधौं मीन मंजु,
अनुदिन चेरे नेरे वाही तट के रहैं।
अंजन की डोर बँधे खंजन खिलारी,
मोर साउनी घटा के मोद मानि मटके रहैं।
वाही मुख - चन्द के चकोर मोरि हारी,
मोरे नैना बरजोर वाही ओर अटके रहैं॥

॥ 44 ॥

मेरे दृग - तारन मैं तेरौ मुखचन्द बसै,
हँसै मन्द - मन्द तापै कोटि चन्द बारौं मैं।
मेरे दृग तेरे जाय दृगन मिलैं तो ऐरे,
तेरे हूँ दृगन मुखचन्द सो निहारौं मैं।
मेरे दृग तेरे दृग एक सौ बसौ है रूप,
सुछवि अनूप हेरि - हेरि हिय हारौं मैं।
याही सौं सलौने स्याम रावरे दृगन जोरि,
आपुने दृगन मोरि कैसैं आजु टारौं मैं॥

॥ 45 ॥

प्रेम कौ परब, नेम सरब निभाइ नीकैं,
ठाकुर अनूठे ध्याइ अन्तर बसाये है।
सुमन सहित तिल अच्छित ललित,
लाल कोये भाल मानों बर तिलक लगाये हैं।
परम ब्रती हैं दिन रैन जागि-जागि,
मैन-मंत्रन बड़ी बिधि सौं बस करि पाये है।
पलकन पानि बरुनीन की कुसा लै,
आजु दृग मुकुतान ही के दान दैन आये हैं॥

॥ 46 ॥

त्यागैं कल सकल बिकल पल-पल जागैं,
लागैं कहाँ, लागैं वाही सुछवि समाये हैं।
अजब चके से औ जके से औ थके से डोलैं,
रंच ना छके से सुधि-बारि भरि ल्याये हैं।
द्वै सौं भये चार पै ना सहस हजार भये,
हारि बिधि तोसौं यहै जाँचन कौं आये हैं।
सोम सौ अनूठौ स्याम आनन बिलोकिबै कौं,
रोम-रोम क्यौं ना दृग दीरघ बनाये हैं॥

॥ 47 ॥

चलन तिहारौ आजु रंच ना रुचत प्यारे,
पल न रमे हौ, पल द्वैक हूँ बितै बितैं।
चातक हितै बिसारि येऊ कहाँ ऐसी करै,
जलधर आरि जलधारन रितै-रितै।
मुसकान राउरी अनूठियै सी आन बान,
खटकि रही है हिये बान सी नितै-नितै।
हाय मोरे चितै कितै खैचत चलेई जात,
जलजात नैनन सौं टेढ़े ह्वै चितै-चितै॥

॥ 48 ॥

खटकति ऐरी हटकति हूँ न रंच हटै,
चाल मटकीली हियैं हालिबौ करति है।
छहरि छबीली छरकीली छनदा सी छबि,
छन - छन छाय उर छालिबौ करति है।
कैसी करौं डोलन अमोलन कपोलन पै,
लोल लट कारी प्रान सालिबौ करति है।
चित मैं चुभी है चारु चपल चितौनि सोई,
चलदल - पल्लव सी चालिबौ करति है॥

॥ 49 ॥

दुरी-दुरी मुरी-मुरी जुरी-जुरी देखति है,
घुरी-घुरी देखौ देखिबै कौ उमहति है।
जोय-जोय रोय-रोय आपुन पौ खोय-खोय,
गोय-गोय भूल जी की भूलि ना कहति है।
लाज-लेज टूटि चुकी, प्रीति पै न रंच चुकी,
झुकी-झुकी वाही ओर प्रान निबहति है।
लाल लालसा सौ लसी बानि कैसी लोयन की,
चाहिकै तुम्हैई चितै चाहिबौ चहति है॥

॥ 50 ॥

मधु सौं भरे हौ मधुदान यासौ माँगति हैं,
जाँइ कहाँ और याही ठौर घेरि कै घिरैं।
रस बस ह्वै कै भईं बिबस न टारे टरैं,
रात ना दिवस मानौं उभरात सी फिरैं।
ये तौ प्रेम-डोर की अनन्त उरझनि,
कबौं गहैं, रहैं गाठैं परि हाय दूसरे सिरै।
मधु-मखियाँन सी भई है अँखियाँ ये प्यारे,
पँखियाँ न डोलैं जबै रूप रस पै गिरै॥

॥ 51 ॥

उमहि जिया मैं पिया नेह के दिया सी भरीं,
कोये लाल लालसा की बाती लै बरति हैं।
कामना - कपूर आस - अगर धुपाय पाय,
जीवन की मूरि-भूरि भावना भरति हैं।
कोमल कमल हूँ के दल सौं बिमल,
पलकावलि नवल ये सजाइ कै धरति हैं।
पूतरी के थारन मैं आँस - हीर - हारन लै,
आँखें तव आरती उतारिबौ करति हैं॥

॥ 52 ॥

बैरी-नैना

पलक कपाट मूँदि राखौं पै न रोके रुकैं,
रति-रन-बाँकुरे उतैई उमहतु हैं।
तीर, तरवार, बरछी लै बार-बार करैं,
बार मीत हूँ निहारि धीर ना गहतु हैं।
माते लड़ि जाते भरे भौन मैं ये ताते,
मैंन-तुरँग सवार जानै जी मैं का चहतु हैं।
मीजि-मीजि डारैं मोरे प्रानन निकारैं लेत,
मोरे नैना मोही सौं क्यौं बैर निबहतु हैं॥

॥ 53 ॥

तरजि बरजि हारी इन तजि लाज डारी,
आनन सौं कानन की ओर छये जातु हैं।
कुटिल कटार तरबार धार बारिन मैं,
बार-बार नाँउ इन हीं के लये जातु हैं।
बंक हैं निसंक अंक लाइबौ कलंक चहैं,
पंकज मुखै चितै उतैई नये जात हैं।
कीजै कहा राम, स्याम सुरँग रँगीले नैना,
आजु ब्रज-बाम हूँ सौं बाम भये जातु हैं॥

॥ 54 ॥

रूप - रस - पानिप की अजब तरंगैं उठैं,
देखत ही आली भई और हूँ बिकल मैं।
नील - सर, हास - हंस, कुंडल - मकर डोलैं,
बूँदैं छलकनि मोती-माल झलमल मैं।
मन मेरौ भींजि गरुआनो सो हिरानो डूबि,
ऊबति हों डूबति हों सोचि पल-पल मैं।
कौंल से कहाय हाय नैना ये निगोड़े जाय,
थोड़े हूँ न बूड़े वा अनूठे स्याम जल मैं॥

॥ 55 ॥

धरकन लाग्यौ उर तरकन लाग्यौ प्रान,
करकन बान वाही भृकुटि बिसाल कौ।
कह्यौ ना परत आली सह्यौ ना परत रंच,
बेग अनबरत उसाँसन उताल कौ।
जल हीन मीन सी बिकल पल-पल डोलै,
ओर औ न छोर है मनोभव के जाल कौ।
आधी लगी ताही सों बिहाल ततकाल भई,
पूरी लगि जैहै कहा हाल ह्वै है बाल कौ॥

॥ 56 ॥

प्रीति-बेलि

हरियारी या मैं पल-पल उमही सी रहै,
ही के आल-बाल चोपि चाह सौ मढ़ति है।
रस-बस ह्वै कै मरबस बारिबै कै मिस,
चाउ भरे पल्लव प्रसून लै कढ़ति है।
स्यामल बरन तरु तरुन तमाल बारे,
ललित सहारे प्यारे पाइ कै चढ़ति है।
दिन दूनी रात चौगुनी सी प्रीति-बेलि आली
अन्तर मैं पाली क्यों निरन्तर बढ़ति है?

॥ 57 ॥

मदनागिन

तपनि बृषादित की तन-बन सूखौ जासौं,
हाय कँसौ अंगनि कौ रंग सौ उतरिगौ।
त्यौं ही मन-आँगन मैं लूकैं सी चलन लागीं,
ताप-दाप प्रान मैं भभूकैं भूरि भरिगौ।
आजु प्रात ही सौं अकुलाति चली जाति,
ना बतावति है बात कौन कँसो कहा करिगौ।
आनन तौ आनन निहारौ क्यों न ऐरी भटू,
नील-पट प्यारी कौ पजरि पीरौ परिगौ॥

॥ 58 ॥

पगै नैन बीच सुलगै पै उर अन्तर मैं,
नीर के प्रवाहन सौं औरै अधिकाति है।
सीरी परी जाति कबौं बुझी-बुझी आपै भई,
बढ़ि-बढ़ि बाउरी यौं राखन जनाति है।
धूम है न आजु लपटन की बिथा है प्यारे,
गति उलटी है मोरी मति सकुचाति है।
जागि-जागि रंच न लखाति है ये कैसी आगि,
लाग सी लगैं है मोहि छार करैं जाति है॥

॥ 59 ॥

बढ़ति न रंच दिन रैन ये बढ़ति जाति,
मढ़ति उरंतर न दीसै कौन लागि है।
जलधर - बपु बरसत घनस्याम रस,
सरसति तापैं और जाति जागि-जागि है।
सीरी परी हाय हिमवत हौं भई हौं,
दूरि बचि-बचि रहौं तचि तन रही पागि है।
लागी है सो लागिहै न लपटैं हूँ लाल कहूँ,
अरी चाह भरी मरी कैसी यह आगि है ?

॥ 60 ॥

बाँसुरी

'तू ही एक ही मैं, है अनेक ही मैं तूही एक,'
कहि-कहि राग ज्यों बजाई यहि ख्याल की।
ता छन तैं बिबस बिकानी सी लखाति,
रंच गात न समाति बिथा ऐसी बढ़ी बाल की।
सोचति कछू कौ कछू नैन नीर मोचति है,
मानो मीन ह्वै गई मनोभव के जाल की।
पाँसुरी पिराति जाति, उससि उसाँस री हूँ,
बाँस की ये फाँस है, कै बाँसुरी गुपाल की।

॥ 61 ॥

पल-पल ऐरी हरि लेति चित चेत
करि देति है हताहत सौ ढाहति कहर है।
हहरि - हहरि थहरात मेरौ गात,
हाय जाति न सँभारी याके काटे की लहर है।
बंसी राग रागिनी दुलारी नागिनी है,
वाही कारे की मु यापै बड़ी भारियै महर है।
मेरी जान कीन्हों पूतना कौ पय - पान,
मुख आन याकी तान ह्वै समान्यौ सो जहर है ॥
॥ 62 ॥

वाही कौं चहौ हौ, गहौ वाही, रहौ वाही लगे,
कैसौ रस लहौ जो न रंच बिसरत हौ।
बाके बिनु ढीले परौ, अकथ बिथा सौं मरौ,
डूबि उछरौ औ धारैं धीर ना धरत हौ।
बाँसुरी तौ बाँस की है, गोपी साँस आँस की है
रूप रस रासि की है ताहि निदरत हौ।
एकै गाँउ ठाँउ एकै छाँउ लहैं दाँउ देत
मोर - पच्छ - बारे पच्छपात क्यौं करत हो ?
॥ 63 ॥

बढ़ति सदाई पल - पल अँसुआ जल सौं,
बढ़ति बढ़ायें औ न जाति बिलगाई है।
प्रानन मैं लागै, लागै लागै उत कानन मैं,
कानन मैं, तानन मैं अजब जगाई है।
सीरी परी देह तऊ बृष के तरनि जैसी,
कोर - कोर पोर - पोर जरनि खगाई है।
बाँस बाँसुरी सौं फूँकि-फूँकि यों मदन - आगि,
ह्वै कै घनस्याम क्यौं लगाई सुलगाई है ?

॥ 64 ॥

एकै सुनि तान हानि प्रान की लखान लागी,
छूट्यौ ज्ञान ध्यान, खान-पान मन भावै ना।
बिबस बँधी सी, कै बिधी सी, कै बधी सी बधू,
बिरस बिलोकै कछू और ऽ ब सुहावै ना।
काँटे सौं कढ़त काँटौ, विष ही उतारै विष,
ऐसे मैं उपाउ कहूँ कोऊ काम आवै ना।
या सौं बीर मेरी वा अहीर के सौं कहु फेर
बैरी एक बेर वहै बाँसुरी बजावै ना !

॥ 65 ॥

सरद-बिलास

तारन के हीरे, राति मानों उतराति बैनी,
कुन्द मैं, कुमुद मैं, अनूठी मुसकाति है।
तितिल बमन तन चन्द्रिका लपेटैं छन--
दीपति दिपति अंग आभा खुली जाति है।
उबटि पराग मलें मल्लिका के मालती के,
छहरि छबीली छीर छींटैं उछटाति है।
सरद हजारा चन्द चाँदी के फुहारा झरैं,
बसुधा सुधा की रस - धारा मैं अन्हाति है॥

॥ 66 ॥

लास भरी कलित कलिन्द नन्दिनी कौं,
चैत चाँदनी कौं, चन्द कौं, सुचन्दनी प्रकास कौं।
कुसुमित काँस, बन बल्लरी बिकास कौं,
मिलिन्दन के बास रचे रूरे रस रास कौं।
अतर सुबास बसे मनहर बास,
भुज-पास के सुपास, रति राँचे प्रेम-पास कौं।
पूरै क्यों न आस आजु देखु सहुलास,
नन्द-नन्द के बिलास राधिका के मन्द हास कौं।

॥ 67 ॥

झनक-झनक पग पायल तनक तामैं,
सबद रसाल डूबौ किंकिनी बलय कौ।
चैत चन्द चाँदनी फुहारन मैं सुकुमार,
न्हाइ आयौ मन्द - मन्द मारुत मलय कौ।
लय कौ बिलय, मन प्रानन हरन हारौ,
बंसी रव, बिबिध बिलास किसलय कौ।
देखु - देखु ऐरी ! आजु सुषमा निलय,
हास कुन्द की कली कौ रास लास कुवलय कौ।

प्रेमासक्ति

उनई नई है प्रीति दोऊ मिलि दोउन पै,
तन हारैं, मन हारैं प्रान-धन हारैं है।
बिहँसि - बिहँसि दोऊ दोउन मैं बसि-बसि,
साँसै भरि आँसू भरि आपुन पौ बारैं है।
लोभी दोऊ दोउन के रूप मैं भुलानै दोऊ,
दोउन कौ दोऊ अपलक ह्वै निहारैं हैं।
तन दुति चोरि पीत पट, नील रंग बोरि,
नीलपट घूँघट न येऊ रंच टारैं हैं॥

पीत-पट कंचन-किनारी के से तेरे रंग,
अंग-अंग अजब अनूठी छबि छई है।
नीरद बरन नील नवल निचोल चोरयौ,
वाही स्यामता की इतै मानों सोभा ठई है।
बैनु के सुबैन तेरे बैनन बसे हैं,
है न चैन गति मति भई मनमथ मई है।
तेरे पग जावक ह्वै लाल कौ रच्यौ है मन,
कंजन गुलाब की सी आभा फैलि गई है॥

॥ 70 ॥

सूखैं अधराधर धरा पै पग नेकु धरैं,
झरैं सेद कनीं पौंछै भाल भीजी लट की।
फूलन की सेज गड़ै, अंक भरै, मूँदै कान,
एक हूँ गुलाब की कली जौ कहूँ चटकी।
तनिक बयार सौं लता सी लटकी सी बाल,
बाँह गहि साधै लहि छाँह बंसीबट की।
भूलि पतरी हूँ प्रात किरन छुऐ ना गात,
तानैं छतरी सी फिरै प्यारौ पीत पट की॥

॥ 71 ॥

राधे दिना आधे भई स्याम राधे-राधे ररै,
पुनि भई राधे स्याम हेरै स्याम टेरै है।
नैरै आइ धाइ छाइ छकै आपुनौई मग,
दृगन तरेरै कबौं हँसि मुख फेरै है।
साम सौ सबेरै औ सबेरै कबौं साम लागि,
आपुनी ही पौरि दौरि नन्द-पौंरि घेरै है।
हे हरि कहाँ लौं कहैं हारी सी हरी सी कबौं,
आपु ही घरी-घरी सु आपु हीं कौं हेरै है॥

॥ 72 ॥

सुधि-बुधि हारि आपुने हूँ कौ बिसारि बैठी,
स्यामा स्याम ह्वै गई सु-प्रीति मैं पगी-पगी।
आपु आपु ही सौं हँसि बोलति कलोलति है,
डोलति है आपु ही मैं रंगनि रंगी-मगी।
आपुनी सगी है आपु, आपु मैं खगी है आपु,
आपु आपुने ही उर कंठ सौ लगी-लगी।
सोभा को सिंगार सी है, फूलन की हार सी है,
आरसी मैं आपु ही कौ देखति ठगी-ठगी॥

॥ 73 ॥

पल-दल सम्पुट मैं कैसैं मूँदि राखति है,
ये तौ गिरबरधारी तीनों लोक गामी हैं।
कैसैं नैन बानन सौं बेधि परबस कीन्हैं
निज बस कोऊ कहै पूरन अकामी हैं।
तन-मन-धन वारि, निज प्रान-पन हारि,
करैं मनुहार पै ये भरत न हामी हैं।
कैसै हित बित थाती सौंपि बैठी ऐरी,
ये तौ दूध-दधि-चोर चित-चोर बड़े नामी हैं॥

॥ 74 ॥

मान-मनावन

जोति बिनु दीप, मंजु मोति बिनु सीप,
बिनु राज के महीप, दीप सागर सलिल के।
चन्द बिनु रैन त्यौं मिलिन्द बिनु अरबिन्द,
सुन्दर मुखारबिन्द बिना एक तिल के।
ओज बिनु कविताई, चोज बिनु उक्ति चारु,
भाउ हूँ मनोज बिना उर उरमिल के।
मेह बिनु दामिनी, सुगेह बिनु भामिनी औ,
कामिनी न सोहै बिना पी की हिलमिल के।

॥ 75 ॥

मंजुल मरीचैं मिलीं चारु कंज पुंजन सौं,
कंज पुंज गुंजरत मत्त मधुपाली सौं।
मारुत हिलोरन सौं मिली तट छोरन सौं,
तटनी बिभोर दौरि अजब उताली सौं।
रूप मिले रंग भिले ऐरी पात पात खिले,
पुलकि प्रभात मुसकात नभ लाली सौं।
तू ही आन बारी मान बारी है अठानबारी,
कहा मन मान हा ! मिली ना बनमाली सौ ?

॥ 76 ॥

तेरे मुख चन्द कौ चकोर छबि डोर बँध्यौ,
अजब विभोर बाढ़ौ ओर निबसतु है।
तेरे बिन छीन भये है दिन तारे गिन
बीतै रैन धीर दृगनीर ह्वै रसतु है।
मान-मान ऐरी मानवती तजि मान देखु,
तेरी मुसकान रंच हेरैं ही हँसतु है।
पी के मन-मानस की मृदुल मरालिनी तू,
पी कौ मन तेरैं पग लाली ह्वै लसतु है ॥

॥ 77 ॥

लकुट मुकुट पीत पट हूँ बिहाय हाय,
परि-परि पाँय हरि हारे हैं मनाय कै।
अनख अनूठी उत लालिमा कपोलन पै,
मान मद बलित बढ़ी है अधिकाय कै।
ताही समै घहरि-घहरि झरि ल्यायौ मेघ,
चंचला चमंकै छिति छोरन लौं छाय कै।
कम्प ना समाय गात आँसुन अन्हाय,
स्याम अंक मैं दुरी है धाय राधे अकुलाय कै॥

॥ 78 ॥

बेनी-शृंगार

बिच बिच रुचि सौ गुही है जुही केतकी की,
माल सुख दैनी पुही सरसिज सेनी की।
परसत बारन की ओट कबौं चाखै चोट,
मुरि-मुरि कुटिल कटाछ कोर पैनी की।
सौंधे सौं समोय जोय-जोय खोय-खोय रहे
सुछवि सँजोय वा अनंग रंग रैनी की।
काँपि उर चाँपि रीझि आजु ही सनेह भींजि
गूँथत गुपाल आजु बैनी मृग-नैनी की॥

॥ 79 ॥

मनहारिन लीला

सुरंग रंगीली चुनि ल्याई चारु चूरी चार,
रंग गोरे हाथन अनूठे खिले जातु हैं।
सुमनलता दल सौं कोमलता सौगुनी है,
दीठि के छुएँई छिन गात छिले जातु हैं।
पुलकि पसींजि रस भींजि गहि राखै पानि,
मृदु बतरानि में हिये हूँ हिले जातु हैं।
साँउरी सलौनी मनहारिन सो को है जासौं—
मन हारि राधे तेरे नैन मिले जातु हैं?

॥ 80 ॥

आगत्पतिका

आगमन पीतम के बाजत वधाये,
आये द्यौस मन भाये आजु चहल-पहल के।
तोरन तनाये, चौक मोतिन पुराये,
छिरकाये आब केबड़ा के चन्दन चहल के।
कल कलधौत के कलस, दीप आरती के,
नीके कै सजाये रंग रति के महल के।
छाये उर अन्तर उमाहन के फूटे परैं,
फहरि फुहारे उतै आठ हूँ पहल के॥

॥ 81 ॥

आगम पिया कौ उर अन्तर तिया कौ,
मंजु जोतित दिया सौ आजु हुलसि हुलसि जात ।
लसि जात लालिमा कपोलन पै दौरि-दौरि,
और तौर आनन विकसि हँसि - हँसि जात ।
फँसि जात बलया, उकसि जात कुच कोरैं,
कसि जात कंचुकी, सुझीनौ पट खसि जात ।
रसि जात नैनन सौं आनंद की बूँदैं चारु,
मैन-बान प्रानन कौं ऐरी डसि-डसि जात ॥

॥ 82 ॥

गावौ क्यों न केकी औ बजावौ क्यों न भेरी भृंग,
रंग सरसावौ क्यौं न सुमन लता छ्ये ।
दौरि-दौरि बारौ क्यौं न दीप छिति छोरन लौं,
ऐ हो बिज्जु जोति ये अपार कर मैं लये ।
सौरभ सँवारौ मैन मंत्रन प्रचारौ,
रस बुन्द क्यौं न ढारौ पौन सतत इतैं ठ्ये ।
प्यारे मनभावन के आवन के द्यौस,
घन सावन सुहावन के आजु उनये नये ॥

॥ 83 ॥

कृष्णाभिसारिका

तन दुति दीपति सु दाबी स्याम सारी धारि,
मृग-मद आड़ सौं उज्यारी मुख - चन्द की।
पात द्रुम पुंजन सघन केलि कुंजन मैं,
मंजु छनदा सी छटा मुसकान मन्द की।
भौंरन की भीर मैं अधीर तन तीर दाबी,
झलक विभूषन की हार बाजूबन्द की।
रैन अँधियारी कारी आहट पगन बारी
दाबि चली प्यारी बनि छाया श्री गुबिन्द की।

॥ 84 ॥

विप्रलब्धा

ज्वै चली लजात जात-जात जलजात नैनी,
स्रैनी भाँति-भाँति पारिजातन की प्वै चली।
ध्वै चली निकुंज थली चारु चन्द चाँदनी सौं,
चन्द चाँदनी सौं मिली चन्दमुखी ख्वै चली।
पै ना पिय प्यारे केलि मन्दिर निहारे मिले,
स्वै चली सु आस धार आँसुन की च्वै चली
आई हुती प्रात की कली सी मुकुली सी,
बात-बात ही में रात की कली सी लली ह्वै चली॥

॥ 85 ॥

खण्डिता

मैंन-मद छाके पग परत कहाँ के कहाँ,
काके भाग जावक लिलार धारि छाये हौ।
अटपटे बैन लटपटे पैंच पाग हूँ के,
बिन ताग बारे हियें हार उपटाये हौ।
अंजन अधर, नैन-कंजन मैं प्यारे,
ऐती केती दै रँगाई अरुनाई पारि ल्याये हौ,
चन्द तौ कलंकी, अकलंकी ब्रजचन्द आपु,
संक कहा, प्रात अरसात गात आये हौ।

॥ 86 ॥

डगमग डोलत न नैंकु हँसि बोलत हैं,
खोलत न राज आज राजत जके-जके।
कौन बड़भागिन सुहागिन के भाग,
जागि-जागि अनुराग रँगे तागन टके-टके।
भोर की अँकोरि कोर-किरन बटोरि चोरि,
पीक पलकन पगे मद में छके-छके।
मैन से धनुरधारी सैन तरकस डारि,
नैन लाल आपुके लखात क्यों थके-थके?

॥ 87 ॥

मध्या-धीरा

चाय सौं रचाय बर बीरी ललचाय कितै,
नाय दृग प्यालिन सुरा उड़ेलि आये है।
लाल लाल डोरन मैं डोरि अनुरागी मन,
रति रन बाँके तन घाय झेलि आये हैं।
कंजन की कैधौं मंजु प्रात की बटोरि—
झुकीं कोरन में चोरि अरुनाई मेलि आये हैं।
को है उत गोरी मीड़ि रोरी नैना आपुके जू—
होरी बिनु जासौं आजु होरी खेलि आये हैं॥

॥ 88 ॥

बचन-बिदग्धा

बिगसी बसन्तिकावली में मिली रंग रली,
संग की अली सौं सौ मैं एक है तियन मैं।
त्यौं ही तिंहि काल तहाँ निकसे रसिक लाल,
चम्पा गर माल, इन्द्रजाल सो दृगन मै
दुरी तरु तरैं, पै सुनाय ऊँचे स्वरैं बोली—
'चाह है जुही की रति औरऊ सु मन मैं।
कूल जमुना के प्रात न्हाय मिलियो री आय,
फूल मैं चुनौंगी उत जाय मधुबन मैं॥'

॥ 89 ॥

गुप्ता

मैं तौ ना चुराई ना दुराई बंसुरी पै ढीठ,
पाछैं परि गयौ धाई गिरी हरबर मैं।
बसन न सूधे, हाय कंचुकी कसन टूटी,
रसन प्रस्वेद लाग्यौ, काँपी थर-थर मैं।
लाड़न लड़ायौ है चढ़ायौ मूड़ नन्दरानी,
नाँउ सो कढ़ायौ, ह्वै है हाँसी घर-घर मैं।
भाग तैं भटू न जौ पै औतीं तुम आज इतै,
सकल अकाज होतौ ब्रज की डगर मैं।

॥ 90 ॥

कंटक करीर हैं, कटीलौ जमुना कौ तीर,
सहर-सहर पौन साँझ कौ पहरु है।
करौं कहा दय्या है हिरानी नई गय्या,
कहै टेढ़ी करि टय्या सासु 'कैसी बेखबरु है।'
जै बौ है सु जाँउँगी पै नाँउ ये धरैंगी सबैं,
नन्द गाँउ चौचद चबाइन कौ घरु है।
घूँघट सरकि जैहै, अँगिया दरकि जैहै,
तनी ये तरकि जैं है. या कौ मोहि डरु है।

॥ 91 ॥

कृष्ण सौं

जल बिनु हाय मछरी सी उछरी सी परै,
सेज पै परी न घरी घरी मरी जाति है।
कौने कहा करी, सुधि बुधि बिसरी है,
कोऊ सुछवि उरन्तर मैं आनि अरी जाति है।
हरी भरी सुकृत फरी सी बल्लरी सी अरी,
तापन छरी सी आजु जरी बरी जाति है।
ऐ हो हरी कोटिन की आपुने बिथा है हरी --
प्यारी सहचरी की बिथा न हरी जाति है।

॥ 92

मन्द मुसकाय हरैं गाय कुलकान हरी,
प्रान्न हरि बाँसुरी अचेत करि गई है।
नैन बर सैनन ने मैन सर, बैनन ने--
माधुरी सुधा की हरि दूरि धरि दई है।
चीर हूँ हमारे हाय जमुना के तीर हरे,
भीर हरी आज हूँ न ताकी सरि भई ह।
हर्‌यौ सरबस सो कहाये 'हरि' पै जू उतै -
बिहरि निगोड़ी क्यौं ये नींद हरि लई है?

॥ 93

लाज

चहकि रही है आज लाज तन गोरे मढ़ी,
कलित कपोलन बढ़ी सी चढ़ी च्वै रही।
मंजु मोती मालन जुरी सी जोति जालन मैं,
अगनित लालन प्रबालन से प्वै रही।
सूही ओढ़नी के झीने तारन सितारन मैं,
दाहकता नाहक न दाबैं पल द्वै रही।
कीन्ह्यौ कहा स्याम छ्वै कै अंग अंगना के जासौं
चारु चैत चाँदनी गुलाबी रंग ह्वै रही॥

॥ 94 ॥

आनन झलक नेकु, ललक छलक नेकु,
भार बरुनीन के पलक ढुरि ढुरि जात।
नेकु मुसकान, नेकु आन, हटि जान नेकु,
भृकुटि कमान मैन बान जुरि-जुरि जात।
झीने पट ओट पट ओट दियें देखति ही,
देखत गुपाल लाल बाल मुरि-मुरि जात।
बादर दरीची बीच दमक दिखाय मानौ—
लाज भर्‌यौ आजु द्विजराज दुरि-दुरि जात॥

॥ 95 ॥

धोय-धोय हारी हाय खारी अँसुआ जल सौं,
भारी सी भई है भीजि टारै ना टरति है।
दुसह दिबार सी किबार सी है ठाढ़ी रहै,
बाढ़ी रहै गाढ़ी रहै आर सी करति है।
आँजि-आँजि माँजि-माँजि नैनन दिखाई,
चारु सैनन सिखाई सीख ध्यान ना धरति है।
प्यारे ब्रजराज कौं बिलोकिबै मैं ऐ री भटू—
लाज क्यौं निगोड़ी आजु बीच हीं अरति है?

॥ 96 ॥

अन्तर उमाहै चित चाहै मिली चाहन सौं,
बाहैं मिलीं बाँहन सौं अन्तर बिहाय कै।
हीतल सौं हीतल मिले हैं, कम्प कम्पन सौं,
साँसन सौं सासैं, दृग दृगन समाय कै।
ऐ री मन प्रानन सौं प्यारे मन प्रान मिले,
अधर मिले से अधराधर सुहाय कै।
एकै कुल बारिन की अजब मिला मिली मैं—
आकुल ह्वै लाज आजु भाजी है लजाय कै॥

॥ 97 ॥

स्वप्न

सावन सुहावन के परन झला से लागे,
चंचला चमंकै, घटा कारी घिरि आई है।
उन तरु छाँहन मो बाँहन मरोरि,
दृग जोरि-जोरि कारी निज कामरी उढ़ाई है।
ताई समै उचटि गई री ये निगोड़ी नींद,
सोइ कै न पाई निधि जागि हूँ गमाई है।
सूनी सेज, हैं न घनस्याम घनस्याम प्यारे,
बरसा बहार मोरे नैनन समाई है॥

॥ 98 ॥

स्नेहाभिव्यक्ति

पीछैं रंग भीनैं बीनैं संग की सहेली फूल,
फूली बन-बेली हरैं हेरि हरि आये री।
इत सहसाई उरझानौ पट झीनौ ताहि—
सहज सुभाय सुरझाय मुसकाये री।
चकित मृगी सी ठौर ठिठकि ठगी सी,
प्रेम पुलक पगी सी उर कम्प अधिकाये री।
ताही समै राधे के अनूठे अनियारे नैन
जलद भये औ रसवारि भरि ल्याये री॥

॥ 99 ॥

आजु प्रात ही तैं अकुलाति जलजात मुखी,
बात न सुहात बन बाहर कीं घर कीं।
हरियारी तीज कह्यौ माय "नन्द गेह जाय --
झूलौ सखीं ऐहैं उतै गाँउ की सहर कीं।"
राजी रोम राजी बाजी अन्तर मैं बाँसुरी सी,
दुरी दुरी बूदैं दृग कोरन सौं ढरकीं।
कँगना कसन, बाजू - बन्द हूँ फँसन लागे,
अँगना समानीं कंचुकी की तनीं तरकीं॥

॥ 100 ॥

बार-बार बारन निबारति सँवारति ही,
रुचि सौं सिंगारति फुलेल भरीं अलकैं।
दौरि दुरि पाछैं भये ठाढ़े श्री रसिक लाल,
घन मैं अनूठी छनदा सी छवि छलकैं।
दोउन के दृग प्रतिबिम्बन मैं जाय जुरे,
रस निचुरे हैं लाहु लालसा के ललकैं।
आर सी करति आरसी सौं हारि हारि सी पै--
टारि सी सकै ना प्यारी प्रीति पगीं पलकैं॥

॥ 101 ॥

भूली खान पान भूली पट परिधान,
ऐरी भूली कुलकान सकुचान गुरु जन तैं।
भूली बतरान इतरान सखियान हूँ सौं,
मन्द मुसकान भूली चन्द से बदन तैं।
भूली ज्ञान ध्यान देस दिवस दिसान भूली,
सकल कलान सीखि पाई जे जतन तैं।
भूली-भूली दौरि-दौरि नन्द पौरिं लागी रहै,
भूल है सु कैसी भूली जाति जो न मन तैं?

॥ 102 ॥

कलित कपोलन पैं छाई अरुनाई,
छाई कम्प की लहर सी उरोजन छहरि कै।
फहरि-फहरि फहराति झीनी ओढ़नी है,
मग मैं बिहरि कछु देखति ठहरि कै।
लहरि-लहरि लट लोल उरझी सी, बिरुझी सी--
कबौं राजै हँसी आनन थहरि कै।
लैन तौ गई ती नीर नागर नबेली,
ल्याई सागर सनेह बारौ गागर मैं भरि कै।

॥ 103 ॥

पंक तौ न लाग्यौ पै कलंक लाग्यौ बजि कै

चाँदनी सी चाँदनी बिछी ती मइलन आगैं,
झीनी परीं बूँदैं, घिरी घटा हूँ गरजि कै।
दौरि दुरीं आलीं पद-कंजन के पंजन की,
मंजु छवि-छाप तऊ छापि गई छजि कै।
हों तौ हुती पाछैं, भरि अंक पहुँचाई स्याम,
बंक करि हारी भौहैं तरजि बरजि कै।
मैंनेई बिलोक्यौ कहा चौथ कौ मंयक जासौं,
पंक तौ न लाग्यौ पै कलंक लाग्यौ बजि कै।

॥ 104 ॥

अनुनय

फोरि-फोरि दधि की कमोरी ब्रज खोरिन ह्वै,
चोरी-चोरी भाजे ताहि कहाँ लौं प्रमानै हम।
झटकि हमारौ पट घूंघट दुरे हौ दौरि,
याही मैं न राउरी बड़ाई अनुमानै हम।
सुनि इन उन की पुकार कहूँ धाये ह्वै हौ,
बीती कहा ताकी बिरुदावली बखानैं हम।
आनै उर तित सौं कढ़ौ तौ रंच जानै तुम्हैं,
साँचे बलबीर बलबीर करि मानैं हम॥

॥ 105 ॥

तम तौ तमोगुन कौ रंचऊ न कम मानौं—
भाँदौ की अधेरी अधिराति अधिकाति है।
काँलिदी बिषै की, काम कोह की घटा है कारी,
मोह-ब्याल, द्रोह ही की पौन हहराति है।
बैसौई समैहै, बेई बानिक बने हैं,
बृत्ति कारा मैं फँसी है देउकी लौं अकुलाति है।
दुष्ट दल गंजन, अरिष्ट बल भंजन कौं—
प्रगटौ न अष्टमी अधूरी रही जाति है॥

॥ 106 ॥

मोरे रखबार येई नन्द के कुमार हैं

सुखमा सिंगार, मैन-मद के हरन-हार,
राधे हिय-हार, प्रेम नेम के अधार है।
सतत उपासे, प्यासे प्रानन-पपीहरा के,
प्यारे उपचार, स्वाँति बुन्द से उदार हैं।
रसिक रँगीले, छैल सुछवि छबीले,
घन-सघन रसीले, स्याम तन गभुआर हैं।
कृपा-कन्द, आरति-निकन्द, ब्रज-चन्द-चारु
मोरे रखबार येई नन्द के कुमार है॥

॥ 107 ॥

उद्‌बोधन

द्रुपद-सुता के बिपदा के छन टारे,
प्यारे बिरुद सदा के जाके दीन-बन्धुता के हैं।
जाके छमता के समता के हैं न और,
दौरि बस मैं बिबस भये मातु ममता के हैं।
जम भ्रम बाके कबौं पास हूँ न जात जाके,
तन-मन प्रान वा अनूठी छवि छाके हैं।
जाके प्रभुता के हैं पताके फहरात,
प्रभु ताके क्यौं न चरन-सरोज तै नैं ताके हैं ?

॥ 108 ॥

□□

श्री ' ब्रज-माधुरी समाप्तः
तेन श्री राधाकृष्णौ प्रीयेताम्।